इकाई–2

विश्व के प्रमुख धर्म, मजहब

वैदिक धर्म

वैदिक धर्म को श्रोत धर्म, आर्ष धर्म या सनातन धर्म भी कहते हैं। इसके अनुयायी आर्य या हिन्दू कहलाते है। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ या उत्तम आचरण है। योग वासिष्ठ में लिखा है – 'जो कर्त्तव्यों का आचरण एवं अकरणीय का निषेध रखते हुए अपने स्वाभाविक चरित्र में निष्ठा रखता है, वह आर्य है। वैदिक धर्म संसार में प्राचीनतम है।

वेद शब्द का अर्थ–

वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है ज्ञान अर्थात् जिससे सब सत्य विद्याओं का ज्ञान होता है।

वेदों की उत्पत्ति–

हिन्दू परम्परा में वेदों को नित्य और अपौरूषेय माना जाता है अर्थात वैदिक ज्ञान अनादि है, अनन्त है अतः ये नित्य हैं। वेद किसी व्यक्ति की रचना नहीं हैं, अतः अपौरुषेय हैं।

ऋषि मंत्रदृष्टा –

वेद अपौरुषेय हैं किंतु सृष्टि के प्रारम्भ में, जिन ऋषियों ने ध्यानावस्था में योगबल से इन मंत्रों का प्रथम दर्शन या साक्षात्कार किया, उन्हें 'ऋषि' कहा जाता है। वेदों के मंत्र दृष्टाओं की संख्या लगभग 300 है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, अंगिरा, गौतम, शुनः शेप, वामदेव, आदि पुरुष तो श्रद्धा, रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, घोषा, सूर्या, यमी आदि स्त्रियां भी मंत्र दृष्टा हैं।

वैदिक धर्म का स्रोत साहित्य–

वेद से तात्पर्य चार संहिताओं से है। वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र ग्रंथ और छः वेदांग गिने जाते हैं।

(i) वेद संहिता– चार वेदों के चार विषय हैं। ऋग्वेद का ज्ञान, यजुर्वेद का कर्म, सामवेद का उपासना, अथर्ववेद का विज्ञान। चारों वेदों के चार उपवेद क्रमशः आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद तथा अर्थवेद हैं।

(ii) ब्राह्मण ग्रंथ– ये वैदिक मंत्रों की व्याख्या करने वाले ग्रंथ हैं–

वेद		ब्राह्मण ग्रंथ
ऋग्वेद	–	ऐतरेय ब्राह्मण, सांख्यायन (कौषितकि)
सामवेद	–	साम व तण्ड्य महाब्राह्मण
अथर्ववेद	–	गोपथ ब्राह्मण
यजुर्वेद	–	तैत्तीरीय, शतपथ ब्राह्मण

(iii) आरण्यक– ये ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट की तरह हैं, जिनमें आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों का विवेचन किया गया है। वृहदारण्य, जैमिनीय, सांख्यायन, ऐतरेय आदि नामों से आरण्यक हैं।

;**(iv) उपनिषद्**– आध्यात्मिक ज्ञान, तत्व चिंतन व अनुभूतियों की चरम अवस्था का वर्णन करने वाले ग्रंथ उपनिषद् हैं। उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है, किंतु अधिक प्रसिद्ध उपनिषद्– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तीरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर हैं।

(v) सूत्र ग्रंथ– इन ग्रंथों में वैदिक यज्ञों का विधान वर्णित है। ये ग्रंथ तीन प्रकार के हैं– श्रोत सूत्र, गृहय सूत्र तथा धर्म सूत्र।

(vi) वेदांग – वैदिक वाङ्मय को समझने के लिए विकसित छः सहायक अंगों को वेदांग कहा जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष, ये छः वेदांग हैं।

वैदिक देवता– विश्व प्रकृति एक जड़ प्रवाह नहीं, बल्कि एक धर्म विधान है। जिस विधान से प्राकृतिक नियम शासित होते हैं, उसे धर्म विधान कहते हैं। इस प्रकृति का संचालन करने वाली शक्ति सत्य, चैतन्य व आनंद स्वरुप (सच्चिदानंद) है। वेद में इस चेतना सत्ता का नाम देवता है। पश्चिम देशों के मैक्समूलर जैसे अध्येताओं ने आर्यो को बाहर से आया असभ्य समूह बताया जो विकास क्रम में प्रारम्भ में 'प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकृत

बहुदेववादी थे।' मैक्समूलर के अनुसार कालांतर में यह 'एक समय एक देवता को सर्वोपरि मानकर उपासना' (एकदा एक एवं देववाद या हेनोथीइज्म), इसके बाद एकेश्वरवाद के साथ 'सर्वेश्वरवाद' की मान्यता हुई। अंततः इसका चरम विकास उपनिषदों में 'एकतत्ववाद' या 'अद्वैतवाद' के रुप में हुआ। किंतु यह पश्चिमी मान्यता अब स्वीकार्य नहीं है क्योंकि आर्य बाहर से नहीं आए तथा वैदिक ऋषि सुसंस्कृत विद्वान थे, यह निर्विवाद है। इन मंत्रदृष्टा ऋषियों के द्वारा साक्षात्कृत आध्यात्मिक रहस्य मंत्रों के रुप में प्रकट हुए हैं। संहिता भाग भी अद्वैतवाद से अनुप्राणित है। संहिता से लेकर उपनिषद् तक वैदिक दर्शन का विकास इस केन्द्रीय आध्यात्मिक अद्वैतवाद का ही विकास है जो अपने अन्तर्गत एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद को समाहित किए है। वेदों में प्राकृतिक मानवीकृत बहुदेववाद की बात कोरी कल्पना है। वैदिक देवतागण एक ही देवता की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक हैं। ऋग्वेद का मंत्र है– 'उस एक सत् का ही विद्वान अनेक रुपों में वर्णन करते हैं' (एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति, ऋग्वेद 1–164–46)

ऋत् का सिद्धान्त– वेदों में 'सत्' को सत्ता की दृष्टि से 'सत्य' और नैतिक नियमन की दृष्टि से 'ऋत्' तथा आनंद की दृष्टि से 'मधुमान्' कहा गया है। ऋत् का तात्पर्य अनुशासन या व्यवस्था है। ऋत् के कारण जगत की सुव्यवस्था है। देवगण ऋत् के ही स्वरुप हैं' (ऋग्वेद 1–89–10) वेदों में मानवता के कर्त्तव्यों और अनुशासनों का निरुपण किया गया है, अतः वैदिक धर्म सार्वभौमिक, मानवतावादी तथा यथार्थ मानव दृष्टि है।

सृष्टि विचार– ऋग्वेद का 'नासदीय सूक्त' सृष्टि विकास का वैज्ञानिक स्वरुप प्रस्तुत करता है। 'सृष्टि के आदिकाल में न सत् था न असत्, न वायु था न आकाश, ... न मृत्यु थी न अमरता, न रात थी न दिन, उस समय केवल वही एक था जो वायुरहित स्थिति में भी अपनी शक्ति से सांस ले रहा था, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था (ऋग्वेद 10–129)

कर्म सिद्धान्त– वैदिक धर्म कर्म व उसके फल के सिद्धान्त को मानता है। पुनर्जन्म की मान्यता इसी से उत्पन्न होती है। निषिद्ध कर्मों से दूर रहकर शुद्ध आचरण करने से व्यक्ति कर्मों का अधिकारी बन सकता है। सत्कर्म के लिए तपस्या, स्मृति, पवित्र आचार, निश्छल व्यवहार तथा अन्तःकरण की शुद्धि आवश्यक है। प्रत्येक जीव अपने द्वारा किए गए कर्मो के अनुसार ही उनका फल भोगने के लिए पुनः जन्म लेता है। इस जन्म में सत्कर्मों द्वारा कर्म क्षय किया जा सकता है। यजुर्वेद में कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की कामना की गई है। सत्कर्म करने में जो कष्ट होता है, उसे तप कहा है।

यज्ञ– वैदिक धर्म में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। अग्नि में हवन सामग्री तथा घी आदि समर्पित करना मात्र यज्ञ नहीं है। इनका उपयोग पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, किंतु वास्तव में सभी श्रेष्ठ कर्मो का नाम यज्ञ है। यज्ञ के तीन भाग हैं– क. जिन कर्मो द्वारा ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना की जाए। ख. विद्वानों, तपस्वियों का आदर किया जाए। ग. पंच तत्वों (अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश) को प्रदूषण मुक्त रखते हुए ठीक उपयोग किया जाए।

यज्ञ दो प्रकार के हैं– नित्य और नैमित्तिक

(अ) नित्य यज्ञ– गृहस्थाश्रम में कर्त्तव्य रुप नित्य यज्ञों को 'पंच महायज्ञ' कहते हैं। समाज को सुचारु चलाने के लिए प्रत्येक गृहस्थ के लिए इन्हें अनिवार्य माना जाता है।

(1) ब्रह्मयज्ञ :– वेद, शास्त्र तथा अन्य सत् साहित्य का अध्ययन, मनन, चिंतन करना। उपनिषद् में कहा है– 'स्वाध्याय में प्रमाद न करें।'

(2) देव यज्ञ :– देव पूजन, अर्चन, संध्या वंदन करना।

(3) पितृ यज्ञ :– माता, पिता, गुरु, आचार्य व वृद्धजनों की सेवा करना।

(4) भूत यज्ञ :– 'सर्व भूतों के हित में रत रहना' ऐसा गीता में कहा है। पशु, पक्षी, कीट–पतंगों के भरण पोषण रक्षण हेतु कार्य करना। अर्थात् खाद्य श्रृंखला व जैव संतुलन तथा जैव विविधता के लिए कार्य करना।

(5) नृ यज्ञ :– मानव कल्याण हेतु कार्य करना।

नैमित्तिक यज्ञ – ऐसे यज्ञ जो व्यष्टि (व्यक्ति) या समष्टि (समस्त विश्व) के किसी प्रयोजन को पूरा करने के लिए किए जाते हैं। इसका उद्‌देश्य कोई फल प्राप्ति होता है जैसे– पुत्रेष्टी यज्ञ, वृष्टि यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, समरसता यज्ञ, विश्व मंगल यज्ञ।

वर्ण व्यवस्था– समाज व्यवस्था के अन्तर्गत गुण व कर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र में विभाजन जो कालांतर में विकृत होकर जाति–व्यवस्था में बदल गया। अतः आज वर्ण

व्यवस्था काल बाह्य हो गई है।

आश्रम व्यवस्था– वेदों में सौ वर्ष को आदर्श आयु मानकर व्यक्ति के जीवन को चार भागों में बांटा था, जिन्हें चार आश्रम– ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम व सन्यास आश्रम कहते हैं। ग्रह्य सूत्र में आश्रम व्यवस्था का वर्णन है।

1. **ब्रह्मचर्याश्रम :–** यह शिक्षा और संस्कार का काल है जिसमें व्यक्ति कठोर तप का अभ्यास करते हुए भावी जीवन में सुयोग्य नागरिक बनने की तैयारी करता है।
2. **गृहस्थाश्रम :–** इसे श्रेष्ठ आश्रम माना है क्योंकि यह आश्रम तीनों आश्रमों का आधार है। यह आश्रम सर्वाधिक सक्रियता, पुरुषार्थ तथा कर्त्तव्य पालन की अपेक्षा करता है।
3. **वानप्रस्थाश्रम :–** गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से निवृत होने तथा समाज कार्य के लिए प्रवृत्त होने की व्यवस्था को वानप्रस्थाश्रम कहते हैं। यह समाज के उपकार से उऋण होने का काल है, जिसमें व्यक्ति की वृत्ति अधिकतम समय समाजोपयोगी कार्यो में लगाने की होती है। उनकी विशेषज्ञता और अनुभव का लाभ समाज को मिलता है।
4. **सन्यासाश्रम :–** सांसारिक मोह बंधनों से मुक्त होकर जीवन का शेष समय भगवद् चिंतन करते हुए निर्लिप्त भाव से देह त्याग की तैयारी तथा अपनी तपस्या से सकारात्मक, सात्विक वातावरण बनाने की समयावधि को सन्यासाश्रम कहते हैं। इस आश्रम में व्यक्ति अपना समय अरण्य में किसी आश्रम में बिताता था।

संस्कार व्यवस्था – संस्कार शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है। वेद में इसका अर्थ धर्म की शुद्धता, पवित्रता लिया गया है। मीमांसा दर्शन के अनुसार संस्कार वह प्रक्रिया है, जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है।' कुमारिल भट्ट के अनुसार 'संस्कार वे क्रियाएँ या रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं।' मनुष्य को आसुरी या पशुवृत्ति से ऊपर उठाकर दिव्य, दैवीय गुणों से युक्त बनाने के लिए जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु पर्यन्त, अर्थात अगले जन्म की तैयारी तक सोलह संस्कारों की व्यवस्था की गई है।

1. **गर्भाधान संस्कार**– माता–पिता 'हमें कैसी संतान चाहिए' इसका विचार कर उसके अनुरुप खान–पान, आचार–विचार एवं व्यवहार प्रारम्भ करते हैं तथा गर्भधारण की योग्यता, उसके अनुकूल मन–स्थिति, स्वास्थ्य एवं अनुकूल समय का विचार कर यह अनुष्ठान करते हैं।
2. **पुंसवन संस्कार**– निषेचन के उपरान्त बढ़ते हुए भ्रूण की स्वस्थ वृद्धि के लिए दूसरे या तीसरे माह में यह संस्कार होता है।
3. **सीमन्तोन्नयन संस्कार**– गर्भस्थ शिशु के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की यह द्वितीय जाँच का संस्कार है, जो छठे या आठवें मास में होता है।
4. **जात कर्म संस्कार**– जन्म के उपरान्त नाल काटने तथा पिता द्वारा शिशु के स्वस्थ एवं मेधावी होने की प्रार्थना का संस्कार।
5. **नामकरण संस्कार**– आठ या दस दिन का होने पर जन्म के समय के ग्रहादि की स्थिति के अनुसार शिशु का गुणवाचक नाम रखने का संस्कार।
6. **निष्क्रमण संस्कार** – जन्म के चौथे महिने में पिता बच्चे को जच्चा गृह से बाहर लाता है ताकि वह सूर्य दर्शन करे एवं बाह्य वातावरण के अनुकूल हो सके।
7. **अन्न प्राशन संस्कार**– जन्म के छठे मास में उसे माँ के दूध के साथ अन्न का आहार देना प्रारम्भ करते हैं। इस संस्कार में उसे खीर खिलाते हैं तथा तीन मंत्र पढ़े जाते हैं, जिनका अर्थ है– हमें शान्ति मिले, भोजन का स्वाद मिले, सुगंधि का आनंद मिले।
8. **चूड़ाकर्म संस्कार**– लगभग एक वर्ष की आयु होने पर जन्म के समय के बालों का प्रथम मुण्डन किया जाता है।
9. **कर्णवेध संस्कार**– आंत्रवृद्धि आदि रोगों के निवारणार्थ एक्यूपंक्चर चिकित्सा का यह संस्कार है, जिसमें कानों का छेदन कर रजत या स्वर्णाभूषण पहनाते हैं।
10. **उपनयन संस्कार**– इसे यज्ञोपवीत संस्कार भी कहते हैं। विद्याध्ययन आरम्भ की योग्यता तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के द्वार रुप यह संस्कार है। यज्ञोपवीत में तीन धागे पितृ ऋण, देव ऋण तथा ऋषि ऋण के स्मरण चिह्न हैं।
11. **विद्यारम्भ संस्कार**– गुरुकुल में जाकर शिक्षा प्रारम्भ करने का संस्कार।
12. **समावर्तन संस्कार**– अध्ययन तथा ब्रह्मचर्याश्रम का समय पूरा होने के बाद गृहस्थ बनने से पूर्व होने वाला दीक्षान्त समारोह।

13. विवाह संस्कार– हिन्दू धर्म में विवाह अनुबंध या समझौता न होकर संस्कार है। गृहस्थ के कर्त्तव्यों के पालन की शपथ लेना है।

14. वानप्रस्थ संस्कार– गृहस्थ के कर्त्तव्य पूरे करने के पश्चात् समाज सेवा के कार्य की दीक्षा लेना।

15. सन्यास संस्कार– जीवन के अंतिम काल में चिंतन, मनन और लोक कल्याण के लिए जीते हुए सन्यास ग्रहण करते समय किया जाने वाला संस्कार।

16. अन्त्येष्टि संस्कार– सासांरिक जीवन का अवसान मृत्यु में और संस्कारों की समाप्ति विधि–विधान से देह को अग्नि को समर्पित करने के अन्त्येष्टी संस्कार में होती है।

पुरुषार्थ :– धर्म शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ही साध्य हों, वह धर्म है।' मानव जीवन के दो अंग है– एक भौतिक (फिजीकल) और दूसरा अतिभौतिक (मेटा फिजीकल)। आधुनिक विज्ञान भी यही मानता है। भौतिक साधन–सामग्री का उपार्जन, रक्षण, भोग के लिए अर्थात् भौतिक उन्नति के लिए 'अभ्युदय' शब्द है। अतिभौतिक अंग को आध्यात्मिक कहा गया है, इसकी चरम उपलब्धि मोक्ष है, जिसे 'निःश्रेयस' कहा गया है। इस अभ्युदय और निःश्रेयस रुपी धर्म की सिद्धि के लिए करणीय कार्यों को पुरुषार्थ कहा गया है। ये चार हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म के अनुरुप अर्थात् संसार के लिए शुभ हो, ऐसे कल्याणकारी मार्ग से 'अर्थ' अर्थात् धनादि भौतिक सुखोपयोग की सामग्रियों का उपार्जन करना तथा 'काम' अर्थात् इन उपार्जित सामग्रियों का संयमित, त्यागपूर्वक भोग करना। यह सब करते समय अंतिम लक्ष्य मोक्ष की तैयारी करना अर्थात् धर्म व मोक्ष के सम्पुट में अर्थ व काम को नियंत्रित रखने की वैदिक व्यवस्था को 'पुरुषार्थ चतुष्टय' कहते हैं।

विश्व परिवार (वसुधैव कुटुम्बकम्) :– अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा है 'भूमि हमारी माता है और हम उसकी संतान हैं' (माता भूमि पुत्रो ऽहं पृथिव्याः) इस प्रकार यह पूरा विश्व एक परिवार है और एक ही माता के पुत्र होने के कारण सब परिजन हैं। इस भाव का अनुभव करने के लिए संगठन सूक्त के तीन मंत्र ऋग्वेद में हैं। इनका भावार्थ हैं कि साथ चलने, साथ बोलने, समान मन वाले होने से कुटुम्ब भाव की अनुभूति हो सकती है। वेद के अधिकतम मंत्र सामूहिक प्रार्थना के हैं, कुछ भी अकेले के लिए नहीं मांगा है, इसी से परिवार की संकल्पना पुष्ट होती है।

नारी का स्थान :– वैदिक धर्म में स्त्री को शक्ति माना है। नारी सृष्टि करने वाली है– 'स्त्री हि ब्रह्म बभूविथ'। वैदिक दर्शन के अनुसार जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष और न ही नपुंसक। जीवात्मा कर्म के अनुसार जिस शरीर को धारण करता है, उसी लिंग वाला हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में लैंगिक भेदभाव का स्थान नहीं था क्योंकि सभी में एक ही आत्मा है। कात्यायनी, मैत्रेयी, गार्गी आदि मंत्र दृष्टा नारियाँ थी। विवाह संस्कार व अन्य वैदिक मंत्रों से भी नारी सम्मान की भावना स्पष्ट होती है।

वैदिक सूक्तियाँ– आदर्श समाज जीवन तथा व्यक्तिगत व राष्ट्रीय चरित्र के लिए वेद में उद्बोधक, प्रेरक वचन हैं जो आज भी संसार को वैदिक धर्म की देन के रुप में मार्ग दर्शक हो सकते हैं–

1. 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' ऋग्वेद का मंत्र कहता है कि 'हे सत्कर्मो में निपुण सज्जनों ! परम ऐश्वर्यशालियों को बढ़ाते हुए, दुष्कर्मी पापियों का दमन करते हुए संसार को श्रेष्ठ बनाते रहो।'
2. 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'– हम राष्ट्र में जागरुक, आदर्श नागरिक बनें। अथर्ववेद (7–36–1) का मंत्र कहता है कि इस राष्ट्र को अपने सौभाग्य का कारण मानकर समृद्ध करो।
3. वैदिक राष्ट्रगीत (यजुर्वेद 22–22) में प्रार्थना की गई है कि राष्ट्र में सभा को प्रकाशित करने वाले युवक जन्म लें। ब्रह्मवर्चस्वी बुद्धिजीवी हों, राजन्य (अर्थात् शासन कर्त्ता शूर, धनुर्धारी और महारथी, सैन्य शक्ति सम्पन्न हो), दूध देने वाली गायें हों (आर्थिक समृद्धि) परिवार को धारण करने वाली स्त्रियाँ हों, समय–समय पर वर्षा हों और सभी औषधियाँ फलवती हों।
4. हम सृष्टि के न्यासी हैं अतः कमाये हुए पर केवल हमारा अधिकार नहीं है। अतः वेद कहता है– सबमें दान देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। 'शत हस्त समाहर, सहस्र हस्त संकिर'

(अथर्ववेद में कहा है, सौ हाथों से अर्जित कर और हजार हाथों से बांट दें।) जो अपने कमाये हुए को अकेला खाता है, बांटकर नहीं खाता, वेद ऐसे अन्न को 'पाप का अन्न कहता है।'

5. अन्न जैविक कृषि से प्राप्त हो तथा उसका उचित प्रबंधन हो इसके लिए वेद का संदेश है– ' हे अन्न का पालन (संरक्षण) करने वाले! हमको निरोगकारी व बलवर्धक अन्न धारण कराइए .... मनुष्य और चौपायों को भी इससे शक्ति दो।'
6. हे मनुष्य! तू ऊपर की ओर जा, उत्थान कर, उन्नति कर, नीचे की ओर मत जा अर्थात् अवनति को प्राप्त मत हो। इसके लिए वेद कहता है– 'स्वस्ति पन्थामनुचरेम्' अर्थात् हम कल्याण के मार्ग पर चलें।
7. विद्यार्थी के लिए वैदिक प्रार्थना है– 'मामद्य मेधाविनं कुरुं' '' हे मेधाविन् परमात्मन्! जिस मेधा बुद्धि की प्रार्थना, उपासना और याचना हमारे देवगण, ऋषिगण और पितृगण करते आए हैं, उसी मेधा शक्ति का दान आज हम सबको प्रदान कीजिए।''
8. 'मित्रस्य चक्षुषा सर्वान् समीक्षामहे' अर्थात् मैं सबको मित्र–दृष्टि से देखूँ।
9. 'मनुर्भव जनय दैव्यं जनम्' अर्थात् मनुष्य बन। अपने भीतर दिव्यतायुक्त जन को जन्म दे।
10. अथर्ववेद का मंत्र है 'मेरा जाना मधुरतायुक्त हो, मेरा आना मधुरतायुक्त हो। मधुर वाणी बोलूँ और मैं मधुर आकृति (प्रसन्न वदन) वाला हो जाऊँ।'
11. 'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः' वेद कहता है कि संसार में सब ओर से अच्छे विचार मेरी ओर आएँ। ऋग्वेद कहता है– हम भद्र (अच्छा) सुनें, देखें। यजुर्वेद के गायत्री मंत्र में कहा है – ' यद् भद्रं तन्न आ सुव' अर्थात् जो भद्र गति है उसे हमको प्राप्त कराओ।

वेदों के विस्तृत सूक्ति संसार में से कुछ यहाँ दिए हैं। वास्तव में मानव होने का विचार और विश्वास तथा विश्व में मानवता का पथ–प्रदर्शन वेद की देन है। इसके माध्यम से हम दैवत्व तक उठ सकते हैं।

जैन धर्म

जैन धर्म की अति प्राचीन परम्परा है। जैन धर्म की स्थापना और विकास में योगदान करने वाले महात्माओं को तीर्थंकर कहा जाता है। तीर्थंकर का अर्थ है (धर्म–तीर्थ की स्थापना) करने वाले । महावीर स्वामी से पहले 23 जैन तीर्थंकर हुए।

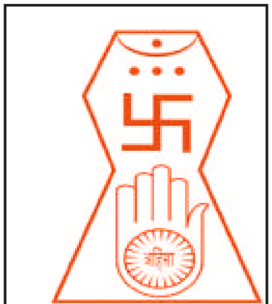

2.1 परस्परोपग्रहो जीवानाम्

पहले तीर्थंकर 'ऋषभ देव' का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद और पुराणों में मिलता है। जैन शब्द संस्कृत के 'जिन' से बना है, जिसका अर्थ है– जीतना, जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ले।

पार्श्वनाथः– जैन साहित्य के अनुसार पार्श्वनाथ का जन्म

2.2 महावीर स्वामी

महावीर के जन्म से लगभग 250 वर्ष पूर्व आठवीं सदी ई. पूर्व में हुआ। वे काशी के इक्ष्वाकुवंशी राजा अश्व सेन के पुत्र थे। इन की माता का नाम वामा था इनका विवाह कुशलस्थल की राजकन्या प्रभावती के साथ हुआ था। 30 वर्ष कि उम्र में ये गृह का त्याग कर सत्य की खोज में निकल गये। 83 दिन की घोर तपस्या के बाद सम्मेद पर्वत पर इन्हें केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञान प्राप्ति के बाद 70 वर्ष तक इन्होंने धर्म प्रचार किया और

100 वर्ष कि आयु में सम्मेद शिखर पर निर्वाण को प्राप्त हुए।

पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चलने वालों को ' निर्ग्रन्थ ' कहा जाता था क्योंकि इस मार्ग पर चलकर सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती थी। पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया– अहिंसा , सत्य , अस्तेय और अपरिग्रह पार्श्वनाथ का प्रभाव, मिश्र, इरान, अफगानिस्तान, साईबेरिया तक फैला। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने उन प्रदेशों की यात्रा में निः ग्रंथ मुनियों को देखने का उल्लेख किया है।

महावीर स्वामीः–महावीर स्वामी 24 वें तीर्थंकर थे। महावीर स्वामी ने जैन धर्म की मौजूदा व्यवस्था में सुधार करके उसे लोक प्रिय बनाया। इसलिए कुछ विद्वान उन्हें जैन सुधारक मानते हैं। महावीर स्वामी का जन्म 599 ई. पू. (कुछ विद्वानो के अनुसार 1862 ई. पू.) वैशाली के निकट कुण्डलग्राम में ज्ञातृक क्षत्रिय कुल में हुआ। पिता का नाम सिद्वार्थ व माता का नाम त्रिशला था जो वैशाली के राजा चेटक की बहन थी। इनका पालन–पोषण राजसी वातावरण में बड़े लाड प्यार से हुआ।

महावीर स्वामी 30 वर्ष तक परिवार के साथ ही रहे। लेकिन माता–पिता की मृत्यु के बाद अपने बड़े भाई नंदिवर्धन से अनुमति लेकर गृह त्याग दिया। प्रारम्भ में 13 महीने तक वस्त्र धारण किये बाद में वस्त्रों को भी त्याग दिया। 12 वर्षों तक कठोर तपस्या तथा साधना के पश्चात ऋजुपालिका ग्राम के पास ऋजुपालिका नदी के तट पर साल के वृक्ष के नीचे उन्हें सर्वोच्च ज्ञान (केवल्य) प्राप्त हुआ। इसी कारण इन्हें केवलिन माना। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अपनी इन्द्रियों को जीतने के कारण 'जिन' एवं अपनी साधना में अतुल पराक्रम दिखाने के कारण महावीर कहलाये। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् महावीर ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। सिद्धान्तों के प्रचार के लिए वर्ष में आठ महीने भ्रमण करते तथा वर्षा ऋतु के चार महीने किसी एक स्थान पर चातुर्मास करते (विभिन्न नगरों में विश्राम करते।) 527 ई. पूर्व में (कुछ विद्वानों के अनुसार 468 ई. पूर्व) में लगभग 72 वर्ष की आयु में राजगृह के पास पावापुरी में दो दिन तक लगातार प्रवचन और उपवास के साथ शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु के बाद जैन धर्म का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ।

जैन धर्म की शिक्षाएँ :– जैन धर्म की शिक्षाओं की जानकारी जैन धर्म ग्रन्थों '' आगम साहित्य '' से मिलती है। पार्श्वनाथ ने भिक्षुओ के लिए चार व्रतों का विधान किया था, अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह। महावीर स्वामी ने ब्रह्मचर्य को जोड़कर पंचमहाव्रत धर्म का प्रदिपादन किया।

1. **अहिंसा :–** यह जैन धर्म का प्रमुख सिद्वान्त है जिसमें सभी प्रकार की हिंसा का निषेध किया गया है। मन, वचन और कर्म से किसी के प्रति अहित की भावना न रखना ही वास्तविक अहिंसा है। लेकिन सांसारिक मनुष्यों के लिए संयमपूर्ण जीवन व्यवहार का निर्देश दिया गया है। अतः मध्यम मार्ग के रुप में गृहस्थों के लिए "स्थूल हिंसा" का निषेध किया गया है। स्थूल अहिंसा से तात्पर्य है किसी निरपराध प्राणी की हिंसा नहीं करना।

2. **सत्य :–** महावीर स्वामी ने सत्य वचन पर जोर दिया। उनका कहना था, कि बिना सत्य भाषण के अहिंसा का पालन सम्भव नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलना चाहिए। हँसी और भय से भी झूठ नहीं बोलना चाहिए।

3. **अस्तेयः–** इसका अर्थ है चोरी नहीं करना। इसका व्यापक अर्थ है कि बिना अनुमति के किसी की भी वस्तु को नहीं लेना और न ही वस्तु लेने की इच्छा रखना। बिना गृह स्वामी की आज्ञा के घर में प्रवेश न करें न ही निवास करें। गृह स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु का उपयोग भी नहीं करें।

4. **अपरिग्रहः–** इसका अर्थ है कि संग्रह न करना। महावीर स्वामी के अनुसार जो व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करता, वह संसार के पाप–जाल से दूर रहता है सांसारिक वस्तुओं के संग्रह से आसक्ति उत्पन्न होती है। प्रकृति में संसाधन सीमित हैं अतः परिग्रह का अर्थ दूसरों को वंचित करना। अपनी न्यूनतम आवश्यकता से अधिक का संग्रह प्रकृति की चोरी है।

5. **ब्रह्मचर्यः–** महावीर स्वामी का मानना था कि उपर्युक्त चारों बातों का पालन तब तक नहीं हो सकता तब तक मनुष्य विषय वासनाओं से दूर नहीं

रहता। ब्रह्मचार्य पालन का अर्थ है कि शरीर की समस्त वासनाओं का त्याग कर देना, अर्थात इंद्रिय संयम का अभ्यास करना।

आगम ग्रंथ :– महावीर के प्रवचनों को गणधरों ने संकलित और उत्तरवर्ती आचार्यों ने लिपिबद्ध किया जो आगम कहलाये, इनकी ज्ञात संख्या 12 है शास्त्रीय भाषा में इन्हें द्वाद्वशांगी कहा गया है। ये ग्रंथ जैन दर्शन के मूलाधार है।

अनेकान्तवाद :– इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक होती है। सामान्य मनुष्य उसके सभी गुणों या पक्षों को पूर्ण रुप से नहीं देख पाता। उदाहरणार्थ हम उतनी ही वस्तुएँ देख सकते हैं जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है, किंतु पृथ्वी का बहुत बड़ा हिस्सा हमारे लिए अज्ञात है। वायुसेना या अंतरिक्ष में जाकर अधिक विस्तृत दृश्य को देख सकते हैं। अतः जितना हमें दिखाई दे रहा है, वह भी सत्य है किंतु वह पूर्ण सत्य नहीं है। जितना मैं जानता हूँ उसके परे भी सत्य है, यह भाव मनुष्य में उदारता और समन्वय की दृष्टि उत्पन्न करता है। इसे ही अनेकान्त दृष्टि कहते हैं, इससे केवल हमारा ही मत सत्य है, इस दुराग्रह का विचार समाप्त होता है। यह सिद्धान्त सोचने का एक दृष्टिकोण देकर विचारों में समन्वय स्थापित करता है जैसे 'गिलास आधा भरा है' तथा 'गिलास आधा खाली है' दोनों ही कथन सत्य है, किंतु इनमें से किसी एक कथन पर विश्वास करना पूर्ण सत्य नहीं है। इस प्रकार विपरीत धर्म एक ही वस्तु में दिखाई देते हैं और प्रत्येक में सत्य का अंश है। यह बताता है कि प्रत्येक व्यक्ति की बात सहानुभूतिपूर्वक सुनी जाए।

स्याद्वाद :– अनेकान्तवाद और स्याद्वाद एक ही हैं, अंतर केवल इतना है कि अनेकान्त वस्तु के अनेक धर्मा होने की घोषणा करता है, तो स्याद्वाद उसे व्यक्त करने की भाषा है। स्याद्वाद शब्द दो शब्दों से बना है। स्याद् = किसी अपेक्षा या विशेष दृष्टि से तथा वाद = मान्यता का कथन। विज्ञान का सापेक्षवाद का सिद्धान्त इसी की पुष्टि करता है। जैसे एक व्यक्ति है, उसे देखकर आप कहते है, 'ये गुरुजी हैं'। किंतु यह वाक्य शिष्य की दृष्टि से है। परन्तु वही व्यक्ति पुत्र की अपेक्षा से पिता, बहिन की अपेक्षा से भाई, पत्नी की अपेक्षा से पति, माता की अपेक्षा से वो पुत्र कहलाएगा। ये सभी उपाधियां सत्य होते हुए भी एकांगी है। इस प्रकार देश और विश्व में समन्वय, सौहार्द तथा सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद तथा व्यवहार में अहिंसा का मार्ग अपनाने की आवश्यकता है।

अनीश्वरवादीः– जैन धर्म ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानता है। उसके अनुसार सृष्टि अनादि, अनन्त तथा नित्य है।

कर्म और पुनर्जन्म :– जैन धर्म पुनर्जन्म और कर्म में विश्वास करता है, जैन धर्म मनुष्य को स्वयं अपना भाग्य विधाता मानता है। इस प्रकार जैन धर्म में कर्म की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। मनुष्य के समस्त सुखों–दुखों का कारण उसके अपने कर्म ही है। मनुष्य के कर्मों के कारण पैदा होने वाली सांसारिक वासनाओं के बन्धन से आत्मा का जन्म–मरण चक्र चलता रहता है। कर्मों के फल भोगे बिना जीव की मुक्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार कर्म ही पुनर्जन्म का कारण है।

मोक्ष या केवल्य :–

जैन धर्म में जीवन का चरम लक्ष्य केवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति ही बताया गया है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए तीन साधन बताये गये हैं सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र।

(1) **सम्यक् ज्ञान :–** इसका तात्पर्य है कि सही विचार अर्थात सत्य और असत्य का भेद समझ लेना। जैन धर्म में ज्ञान के पाँच प्रकार बताये गये हैं। मति अर्थात् इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान, श्रुति अर्थात् सुनकर अथवा वर्णन के द्वारा प्राप्त ज्ञान। अवधि ज्ञान अर्थात् कहीं रखी हुई, किसी वस्तु का दिव्य ज्ञान। मनःपर्याय अर्थात् अन्य व्यक्तियों के भावों और विचारों को जानने का ज्ञान, केवल्य ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान, जिसे प्राप्त करने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।

(2) **सम्यक् दर्शन :–** जैन तीर्थंकरों और उनके उपदेशों में दृढ विश्वास ही सम्यक दर्शन है। इसके आठ अंग बताये गये हैं सन्देह से दूर रहना, सांसारिक सुखों की इच्छा का त्याग करना, आसक्ति–विसक्ति से बचना, गलत रास्ते पर नहीं चलना, अंध– विश्वासों

से विचलित नहीं होना, सही विश्वासों पर अटल रहना, सभी के लिए समान प्रेम रखना। जैन सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था तथा विश्वास रखना।

(3) **सम्यक् चरित्रः–** जो कुछ भी जाना जा चुका है तथा उसे सही माना जा चुका है उसे कार्य रूप में परिणत करना ही सम्यक चरित्र है। इसके अन्तर्गत भिक्षुओं के लिए पाँच महाव्रत तथा गृहस्थों के लिए पाँच अणुव्रत बताये गये हैं तथा सच्चरित्रता एवं सदाचार पर बल दिया गया है।

जैन धर्म में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को त्रिरत्न कहा जाता है। त्रिरत्नों के अनुसरण करने पर कर्मो का जीव की ओर बहाव रूक जाता है जिसे "संवर" कहा जाता है। साधना से संचित कर्म नष्ट होने लगतें है इस अवस्था को जैन धर्म में 'निर्जरा' कहा जाता है। जिससे जीव के कर्म पूर्ण रूप से समाप्त हो जाते हैं तब वह केवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति कर लेता है। कैवल्य के पश्चात जीव का इस संसार से आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है तथा जीव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन तथा अनन्त वीर्य, अनन्त सुख की प्राप्ति कर लेता है जिसे जैन धर्म में ' अनन्त चतुष्टय ' कहा जाता है।

कालान्तर में जैन धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर दो प्रमुख धाराओं में विभक्त हो गया। श्वेत वस्त्र धारण करने वाले श्वेताम्बर जैन व पूर्णतः निर्वस्त्र रह कर साधना करने वाले साधु दिगम्बर कहलाते हैं। काल प्रवाह में ये दोनों ही धाराएँ अनेक उप धाराओं में विभक्त हो गई लेकिन पंच महाव्रतों की मूल मान्यता सभी धाराओं की एक ही है।

जैन धर्म की विश्व को देनः– जैन धर्म ने विश्व में सांस्कृतिक समन्वय तथा एकता की भावना को सफल बनाया है । विचार–समन्वय के लिए अनेकान्तवाद दिया। आचार– समन्वय की दिशाओं में मुनि–धर्म और गृहस्थ धर्म की व्यवस्था देकर प्रवृति और निवृति दोनों मार्गों का समन्वय किया। आज भी हम इन सिद्धान्तों का अनुकरण करें तो आपसी भेदभाव एवं साम्प्रदायिक द्वेष दूर हो जायेंगे तथा संसार में शान्ति, बन्धुत्व, प्रेम एवं सहिष्णुता स्थापित की जा सकेगी।

जैन धर्म की देन साहित्य एवं कला के साथ स्थापत्य कला व लोक भाषाएँ, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल, तेलगू आदि भाषाओं में जैन साहित्यों की रचना की गई। संस्कृत भाषा में भी जैन मुनियों द्वारा रचनायें लिखी गई। हस्त लिखित जैन ग्रन्थों पर उकेरे हुए चित्र पूर्व मध्य युगीन चित्रकला के सुन्दर नमूने हैं। जैन धर्म की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन कलात्मक स्मारक, मूर्तियाँ, मंदिर, मठ, और गुफा आज भी सुरक्षित हैं। उडीसा के पुरी जिले में उदयगिरी और खण्डगिरी में 35 जैन गुफाओं के अतिरिक्त एलोरा में भी जैन गुफाऐं मिली है। मध्य भारत में खजुराहो के दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के जैन मंदिरों तथा राजस्थान में देलवाडा व रणकपुर जैन मंदिर, कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कर्नाटक के श्रवणबेलगोला पर्वत पर स्थित बाहुबली की प्रतिमा दर्शकों को आश्चर्य चकित कर देती है।

पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियंत्रण में महावीर प्रदत्त जैन दर्शन सम्पूर्ण समाधान है। अपरिग्रह का सिद्धान्त पदार्थों के असंग्रह और इच्छाओं आवश्यकताओं के कम करने का सिद्धान्त है, प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को कम से कम उपयोग में लेकर, विवेकपूर्वक सदुपयोग करना, दुरूपयोग कतई नहीं होने देने से यह प्रकृति लम्बे काल तक मनुष्य का पालन पोषण कर सकती है।

बौद्ध धर्म

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत के पूर्व भाग में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। बौद्ध धर्म की स्थापना महात्मा बुद्ध ने की।

2.3 महात्मा बुद्ध

राजसी जीवन एवं सुखी दाम्पत्य जीवन को त्याग कर सत्य की खोज में घोर कष्टों एवं कठिनाईयों का सामना कर ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्ति के बाद बताया कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। उन्होंने वर्ण भेद एवं जाति–भेद को निरर्थक बताया और दुःखी मानवता को जीवन का सही और सरल मार्ग बतलाया।

गौतम बुद्ध का जीवन :– महात्मा बुद्ध का जन्म 563 ई. पूर्व (कुछ विद्वानों के अनुसार 566 ई.पूर्व) में शाक्य क्षत्रिय कुल में शुद्धोदन के यहाँ लुम्बिनी वन में हुआ। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। इसकी जानकारी अशोक के रूम्मिनदेई अभिलेख से मिलती है। गौतम की माता का नाम महामाया था जो कौशल गणराज्य की कन्या थी। माता का निधन गौतम के जन्म से सात दिन बाद ही हो गया था। इनका लालन–पालन इनकी विमाता गौतमी ने किया। गौतम के जन्म के समय ब्राह्मण "कौडिन्य" एवं तपस्वी काल देवल ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा या महान् सन्यासी। इनके पिता ने इनका लालन–पालन राजसी ऐश्वर्य एवं वैभव के वातावरण में किया तथा इन्हें राजकुमारों के अनुरूप शिक्षा दी गई। परन्तु बचपन से ही वे अत्यधिक संवेदनशील एवं चिन्तनशील स्वभाव के थे प्रायः एकान्त में बैठकर वे जीवन–मरण सुख–दुःख आदि समस्याओं पर गम्भीर रूप से विचार किया करते थे। उन्हें इस प्रकार सांसारिक जीवन से विरक्त होते देख कर उनके पिता को गहरी चिन्ता होने लगी। उन्होंने सिद्वार्थ को सांसारिक जीवन में व्यस्त करने का प्रयास किया। 16 वर्ष की आयु में ही इनका यशोधरा के साथ विवाह कर दिया गया। यशोधरा एवं सिद्वार्थ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम राहुल रखा। सिद्वार्थ के पिता ने अपने पुत्र को सांसारिक प्रवृत्तियों में लगाने के लिए प्रत्येक मौसम के अनूकूल अलग–अलग प्रासाद बनवा दिये तथा प्रत्येक प्रासाद में विभिन्न ऋतुओं के अनुसार सभी प्रकार के ऐश्वर्य और भोग विलास की सामग्री उपलब्ध करवा दी। वैभव और विलास के बीच भी सिद्वार्थ के मन में जीवन की समस्याओं को लेकर निरन्तर द्वन्द्व रहता था। 12–13 वर्ष गृहस्थ जीवन में रहने के बाद भी सिद्वार्थ का मन सांसारिक प्रवृत्तियों में नहीं लगा। एक दिन विहार के लिए जाते हुए उन्होंने प्रथम बार वृद्ध, द्वितीय बार एक व्याधि ग्रस्त मनुष्य, तृतीय बार एक मृतक तथा चतुर्थ बार एक प्रसन्नचित सन्यासी को देखा। मानव को दुःखों में फंसा हुआ देखकर उनका मन खिन्न हो गया। बुढापा, व्याधि तथा मृत्यु जैसी गम्भीर सांसारिक समस्याओं ने उनके जीवन का मार्ग ही बदल दिया और इन समस्याओं के समाधान के लिए अपनी पत्नी एवं पुत्र को सोते हुए छोडकर 29 वर्ष की आयु में गृह त्याग दिया। इस गृह त्याग को बौद्धग्रन्थों में "महाभिनिष्क्रमण" कहा गया।

ज्ञान की खोज में गौतम बौद्ध एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहे। सर्वप्रथम वैशाली के निकट "आलारकलाम" नामक तपस्वी के आश्रम में ज्ञानार्जन के लिए गये जो सांख्य दर्शन के आचार्य थे तथा अपनी साधना–शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। परन्तु वहाँ उनकी ज्ञान पिपासा शांत नहीं हुई। इसके बाद वे राजगृह के ही एक ब्राह्मण "उद्रक रामपुत्र" के पास गये। यहाँ भी उनको शान्ति नहीं मिली। यहाँ से वे उरूवेला (बोधगया) नामक स्थान पर पहुँचे।

यहाँ उन्हें पाँच ब्राह्मण साधक सन्यासी मिले। प्रारम्भ में इन्होंने कठोर तपस्या की जिससे इनका शरीर जर्जर हो गया। बाद में ऐसी साधना प्रारम्भ की जिसकी पद्धति, पहले की अपेक्षा सरल थी, इस पर इनके साथियों से मतभेद हो गये तथा वे उनका साथ छोड़ कर सारनाथ चले गये। छः वर्षों की साधना के पश्चात् 35 वर्ष की उम्र में वैशाख पूर्णिमा की रात को पीपल के वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान (आन्तरिक ज्ञान) प्राप्त हुआ। तभी से वे "बुद्ध" नाम से विख्यात हुए। उस वृक्ष का नाम बोधिवृक्ष तथा उस स्थान का नाम बोधगया हो गया। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध अपने ज्ञान और विचारों को जन साधारण तक पहुंचाने के उद्देश्य से निकल पड़े और सारनाथ पहुँचे। यहॉ उन्होनें पांचों ब्राह्मण साथियों को अपने ज्ञान की, धर्म के रूप में दीक्षा दी। यह घटना बौद्ध धर्म के इतिहास में "धर्म चक्र–प्रवर्तन" के नाम से

जानी जाती है। बुद्ध 45 वर्ष तक अपने धर्म का प्रचार करते रहे। उन्होंने साधारण बोल चाल की भाषा को अपनाते हुए जाति–पाँति और ऊँच–नीच की भावना से दूर रहते हुए सभी को उपदेश दिये। अन्त में 80 वर्ष की आयु में 483 ई. पूर्व (कुछ विद्वानों के अनुसार 486 ई.पूर्व) मल्ल गणराज्य की राजधानी कुशीनगर में अपना शरीर त्याग दिया। महात्मा बुद्ध के शरीर त्यागने की घटना को बौद्ध इतिहास में "महापरिनिर्वाण" कहा जाता है। बुद्ध का अन्तिम उपदेश था – " हे भिक्षुओं ! तुम आत्मदीप बनकर विचरो। तुम अपनी ही शरण में जाओ। किसी अन्य का सहारा मत ढूंढो। केवल धर्म को अपना दीपक बनाओ। केवल धर्म की शरण में जाओ।"

बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ :–

महात्मा बुद्ध जगत् और जीवन को लेकर चले। उन्होंने जीवन को जैसा है, वैसा ही मानकर व्यवहारिक दृष्टिकोण से इसकी समस्याओं की खोज की। उनका धर्म व्यवहारिक धर्म था जो मनुष्य की उन्नति का साधन था। बौद्ध धर्म जीवन का विषय है और इसी जीवन में "निर्वाण" की बात कहता है। वह नितान्त बुद्धिवादी है और उसमें अन्धविश्वास तथा अन्धपरम्पराओं के लिए मूल रुप में कोई स्थान नहीं है। उनके धर्म का आधार, मानव का कल्याण था।

बौद्ध धर्म की आधारशिला उनके चार आर्य सत्य हैं और उनके अन्य सिद्धान्तों का विकास इन चार आर्य सत्यों पर ही हुआ है। चार आर्य सत्य निम्न लिखित है–

1. **दुःख :–** बुद्ध ने सम्पूर्ण मानवता को दुःखी देखा। उनका कहना था कि जीवन दुःखों तथा कष्टों से परिपूर्ण है जिन्हें हम सुख समझते हैं वे भी दुःखों से भरे हुए हैं। चारों और दुःख ही दुःख है।

2. **दुःख समुदय :–** प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है अतः दुःख का भी कोई कारण है। दुःख का कारण अविद्या है।

3. **दुःख निरोध :–** जिस प्रकार संसार में दुःख है, और दुःख का कारण है, उसी प्रकार दुःख निरोध भी सम्भव है। यदि दुखों के मूल कारण अविद्या का नाश कर दिया जाए तो दुःख भी नष्ट हो जाएगा। दुःख निरोध को ही निर्वाण कहा गया है।

4. **दुःख निरोध का मार्ग :–** कोई भी व्यक्ति बुद्ध द्वारा बताए मार्ग पर चल कर दुःखों पर विजय प्राप्त कर सकता है। दुःख से मुक्ति का मार्ग 'आष्टांगिक मार्ग' कहलाता है। ये आठ अंग निम्नलिखित है–

1. सम्यक् दृष्टि – अर्थात् चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान तथा बुद्ध वचनों में श्रद्धा।
2. सम्यक् संकल्प – भोगवाद से मुक्त, दूसरों के साथ पूर्ण मैत्री करना तथा सभी के साथ कल्याण की भावना करना। आर्य मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय।
3. सम्यक् वाचा (वाणी)– सत्य, परस्पर सद्भाव उत्पन्न करने वाला प्रिय एवं मित भाषण। यह वाणी की पवित्रता और सत्यता है।
4. सम्यक् कर्मांत – लोगों के लिए कल्याणकारी कर्मो का आचरण। अर्थात् हिंसा, द्वेष व दुराचरण का त्याग तथा सत्कर्मो का आचरण है।
5. सम्यक् आजीव – जीवन यापन के लिए ऐसा व्यवसाय करना, जिससे समाज को हानि न पहुँचे। अर्थात् शुभ एवं सत्य मार्ग से आजीविका चलाना।
6. सम्यक् व्यायाम (प्रयत्न) – बुरे विचारों को आने से रोकना तथा मन में स्थित सुविचारों को बढ़ाना। इन चार मानसिक प्रयत्नों को सम्यक् व्यायाम कहते हैं।
7. सम्यक् स्मृति – शरीर अपवित्र पदार्थो से बना है। इसका स्मरण, शरीर के सुख–दुःखादि वेदनाओं, चित्त का अवलोकन, इंद्रियों के विषय, बंधन तथा उनके नाश के उपायों का ठीक प्रकार से विचार करना सम्यक् स्मृति है।
8. सम्यक् समाधि – चित्त को एकाग्र कर ध्यान का सम्पादन करना।

मध्यम प्रतिपदा :– दुःखों से छुटकारा पाने के लिए महात्मा बुद्ध ने जो आष्टांगिक मार्ग बतलाया है वह न तो अत्यधिक शारीरिक कष्ट व क्लेश से युक्त कठोर तपस्या को उचित मानता है और न ही अत्यधिक सांसारिक भोग विलास को। दोनों की ही अतियाँ दुःख के कारण हैं। दोनों

के बीच का मार्ग 'मध्यम मार्ग' बताया है, इसका अनुसरण करना चाहिए।

त्रि रत्न :– ये आष्टांगिक मार्ग के अन्तर्गत आते हैं। शील, समाधि और प्रज्ञा– ये त्रि रत्न हैं तथा इन्हें निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

पंचशील :– अहिंसा, अस्तेय, सत्य, अपरिग्रह तथा ब्रह्यचर्य,– ये पंचशील कहलाते है। ये नैतिक जीवन के आधार है तथा गृहस्थ तथा भिक्षुक दोनों के लिए आचरणीय हैं। इनके अतिरिक्त भिक्षुओं के लिए पाँच आचार के नियम और है। इस प्रकार भिक्षुक के लिए 'दस शील' है, जैसे – असमय भोजन, माला धारण, स्वर्ण–रजत आदि व सुखद शैया का त्याग।

अनात्म एंव अनीश्वरवाद :– गौतम बुद्ध ने बताया कि संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील अस्थायी, गतिशील है। बौद्धधर्म में इसे अनित्यवाद या "क्षणिकवाद" का सिद्धान्त कहा गया है। अतः आत्मा जैसी कोई नित्य वस्तु नहीं है। अतः उन्होंने आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकार था।

कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद :– बौद्ध धर्म कर्मवाद को मानता है। उनका कहना है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। वे मनुष्यों की समस्त कायिक, वाचिक, और मानसिक चेष्टाओं को कर्म मानते थे। यही कर्म सुख–दुःख के दाता हैं। पुनर्जन्म के बारे में बौद्ध मत है कि मनुष्य का जीवन उसके कर्मो के अनुसार अच्छा या बुरा होता है। पुनर्जन्म आत्मा का नहीं अपितु अहंकार का होता है। जब मनुष्य की तृष्णाएँ एंव वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब वह पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है।

कार्य–कारण संबंध :– प्रत्येक कार्य का कोई कारण होता है। बौद्ध धर्म का कार्य–कारण का सिद्धान्त प्रतीत्य–समुत्पाद के नाम से भी जाना जाता है। 'प्रतीत्य' का अर्थ है 'अपेक्षा रखकर' तथा 'समुत्पाद' का अर्थ है– 'उत्पत्ति', अतः प्रतीत्य–समुत्पाद का अर्थ हुआ– कारण पर निर्भर रहकर कार्य की उत्पत्ति।

बौद्ध धर्म के अन्तर्गत इस सिद्वान्त के तीन सूत्र बताये हैं :–

1. इसके होने पर यह होता है।
2. इसके न होने पर यह नहीं होता।
3. इसका निरोध होने पर यह निरूद्ध हो जाता है।

इस कार्य–कारण की श्रंखला के 12 क्रम बताये हैं

1. अविद्या
2. संस्कार
3. विज्ञान (चैतन्य)
4. नाम रूप
5. षडायतन (पांचों इन्द्रियों तथा मन समूह)
6. स्पर्श
7. वेदना
8. तृष्णा
9. उपादान (सांसरिक विषयों में लिपटे रहने की इच्छा)
10. भव (शरीर धारण करने की इच्छा)
11. जाति (शरीर धारण करना)
12. जरा–मरण

इस श्रंखला को "द्वादश निदान" या "भव चक्र" भी कहते हैं। मरण इस चक्र का अंत नहीं है। मरण के बाद भी अविद्या और कर्म संस्कार रहते है जो नये जन्म का कारण बनते हैं। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है।

मोक्ष :– बौद्ध धर्म में जीवन का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण (मोक्ष) है। इसका शाब्दिक अर्थ बुझ जाना या शान्त हो जाना है। दुःख के मूल कारण तृष्णा के बुझ जाने पर निर्वाण की स्थिति आ जाती है। निर्वाण की प्राप्ति पर मनुष्य जन्म–मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

बौद्ध धर्म का प्रचार एवं विकास :– गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रचार योजनाबद्व तरीके से किया। वे वर्षा ऋतु में विभिन्न नगरों में विश्राम करते तथा शेष ऋतुओं में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम–घूम कर अपने मत का प्रचार करते। उन्होंने अपने मत के प्रचार के लिए बौद्ध संघ और बौद्ध विहारों की स्थापना की। यही कारण रहा कि गौतम बुद्ध के समय और कालान्तर में राज्याश्रय के कारण बौद्ध धर्म का प्रचार भारत में

ही नहीं अपितु चीन, जापान, श्रीलंका, तिब्बत, इण्डोनेशिया, बर्मा (म्यांन्मार), कोरिया, नेपाल, मंचूरिया सुमात्रा, मलाया, कम्बोडिया तथा वियतनाम आदि देशों में हुआ। अशोक और कनिष्क ने तो अपने राज्य का धर्म, "बौद्ध धर्म" घोषित कर दिया। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने हर्ष के समय 10 हजार बौद्ध विहारों का उल्लेख किया है। जिनमें 75 हजार भिक्षु– भिक्षुणियाँ रहते थे। नालन्दा बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। बौद्ध संघ द्वारा उनके मत का अधिक प्रचार प्रसार हुआ।

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को लेखबद्ध करने और बौद्ध धर्म भिक्षुओं में आ रहे मतभेद को दूर करने तथा बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए चार बौद्ध संगीति अथवा महासभाओं का आयोजन हुआ।

प्रथम बौद्ध संगीति – बुद्ध की मृत्यु के तत्काल बाद राजगृह की सप्तपर्णि गुफा में आयोजित की गई थी। इस समय मगध का शासक अजातशत्रु था। इस संगीति की अध्यक्षता महाकस्यप ने की तथा बौद्ध की शिक्षाओं का संकलन किया जिन्हें सुत्त पिटक व विनय पिटकों में बांटा गया। सुत्त पिटक का संकलन आनन्द ने किया और इसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्त रखे गये। दूसरा विनय पिटक जिसका संकलन उपालि ने किया जिसमें भिक्षुओं के आचार–विचार के नियम थे।

द्वितीय बौद्ध संगीति :– द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन कालाशोक के शासन काल में गौतम बुद्ध की मृत्यु के 100 वर्ष बाद 383 ई. पू. वैशाली में किया गया। इस सभा को बुलाने का कारण बौद्ध भिक्षुओं में आये मत–भेदो ं को दूर करना था। इस बौद्ध संगीति के बाद भिक्षु संघ दो संम्प्रदायों में बंट गया। एक परम्परागत नियम में आस्था रखने वालों का सम्प्रदाय जिसका नेतृत्व महाकच्चान ने किया, स्थाविर अथवा थेरवादी कहलाया तथा दूसरा, जिसका नेतृत्व महाकस्यप कर रहा था, जो परिवर्तन के साथ विनय को स्वीकार करने वालों का सम्प्रदाय, महासांघिक अथवा सर्वास्तिवादी कहलाया।

तृतीय बौद्ध संगीति :– यह महासभा मौर्य शासक अशोक के काल में पाटलिपुत्र में बुलाई गई। इसकी अध्यक्षता मोगलीपुत्त तिस्त ने की। उन्होने कथावत्थु नामक ग्रन्थ का संकलन किया, जो अभिधम्म पिटक का भाग है। जिसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की दार्शनिक व्याख्या मिलती है।

चतुर्थ संगीति :– यह सभा कुषाण शासक कनिष्क के समय कश्मीर के कुण्डलवन में हुई। इसकी अध्यक्षता वसुमित्र ने की तथा अश्वघोष इसके उपाध्यक्ष थे। इसमें बौद्ध ग्रन्थों के कठिन अंशों पर सम्यक् विचार–विमर्श हुआ। इसी समय बौद्ध धर्म हीनयान और महायान दो स्पष्ट एवं स्वतन्त्र सम्प्रदायों में विभाजित हो गया।

बौद्ध धर्म के प्रमुख सम्प्रदायः– 1. हीनयान 2. महायान 3. वैभाषिक सम्प्रदाय 4. सौत्रान्तिक सम्प्रदाय 5. माध्यमिक (शून्यवाद) सम्प्रदाय 6. विज्ञानवाद (योगाचार) सम्प्रदाय 7. वज्रयान सम्प्रदाय।

बौद्ध धर्म की विश्व संस्कृति को देन

इस धर्म ने भारत ही नहीं विश्व संस्कृति के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया।

1. इस धर्म ने सर्वप्रथम विश्व को एक सरल तथा आडम्बर रहित धर्म प्रदान किया। जिसका अनुसरण अमीर–गरीब सभी कर सकते थे। धर्म के क्षेत्र में अहिंसा एवं सहिष्णुता का पाठ पढाया। बौद्ध धर्म ने युद्व विजय की नीति को त्याग कर धम्मविजय की नीति को अपनाया तथा लोक कल्याण का आदर्श समस्त विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया।

2. बौद्ध धर्म के उपदेश तथा सिद्धान्तों को पाली तथा स्थानीय भाषाओं में लिपिबद्ध किया गया, जिससे स्थानीय भाषाओं का विकास हुआ।

3. बौद्ध संघों के संचालन में जनतान्त्रिक प्रणाली को अपनाया गया था जिसको बाद में राज शासन में भी अपनाया गया।

4. बौद्ध धर्म ने भारत ही नहीं विश्व के देशों में अहिंसा, शान्ति, बन्धुत्व, सह–अस्तित्व का आदर्श प्रस्तुत किया। इसी कारण भारत का विश्व के देशों पर नैतिक आधिपत्य कायम हुआ।

5. बौद्ध धर्म ने विश्व के लोगों को समानता का आधार प्रदान किया तथा नैतिक स्तर पर ऊँचा उठाने, जन–जीवन में सदाचार एवं सच्चरित्रता की भावना का विकास को प्रधानता दी।

6. बौद्ध धर्म ने तर्क शास्त्र का विकास किया तथा बौद्ध दर्शन में शून्यवाद तथा विज्ञानवाद की दार्शनिक पद्धतियों का उदय हुआ जिसका विश्व के दर्शन में उच्च स्थान है।

7. बौद्ध धर्म ने भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध विश्व के विभिन्न देशो से बनाये। भारत के बौद्ध भिक्षुओं ने विश्व के विभिन्न भागों में जा कर बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और सिद्धान्तों का प्रचार किया। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं से आकर्षित होकर अनेक विदेशी यात्रियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया जिसमें प्रमुख शक, पार्थिय, कुषाण आदि थे। यवन के शासक मिनेण्डर तथा कुषाण शासक कनिष्क ने बौद्ध धर्म को राज धर्म बनाया। अनेक विदेशी विद्वानों ने बौद्ध धर्म के अध्ययन करने तथा पवित्र बौद्ध स्थलों को देखने के लिए भारत की यात्रायें की। फाहियान, ह्वेनसांग तथा इत्सिंग आदि चीनी यात्रियों ने भारत में वर्षो तक निवास किया तथा बौद्ध धर्म का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया।

8. बौद्ध धर्म की महत्व पूर्ण देन कला एवं स्थापत्य के विकास में रही है। इस धर्म की प्रेरणा से भारत ही नहीं विश्व में अनेक स्तूप, विहार, चैत्यगृह, गुहायें, मूर्तियाँ आदि बनाई गई। जिन्होंने भारत के साथ–साथ विश्व कला को समृद्ध बनाया। सांची, सारनाथ, भरहुत आदि के स्तूपों तथा अजन्ता की गुफाओं के चित्र तथा मूर्तियाँ अनुपम है।

9. वृहत्तर भारत के निर्माण में योगदान :– भारत से बाहर देशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार हुआ उन देशों को सम्मिलित रूप से वृहत्तर भारत या सांस्कृतिक भारत कहा जाता है। इस कार्य में बौद्ध प्रचारकों ने अपूर्व साहस, समर्पण भाव से पूर्ण योगदान दिया। अशोक ने बौद्ध धर्म प्रचारकों को विदेशों में भेजने की शुरूआत की थी।

इस्लाम मज़हब या दीन

सातवीं शताब्दी के आरम्भ में अरब में एक मज़हबी आन्दोलन की शुरूआत हुई, जिसने कबीलों और जातियों में बिखरे अरब वासियों को संगठित किया और बाद में एक विशाल साम्राज्य की नींव डाली। यह मज़हबी आन्दोलन विश्व में इस्लाम मज़हब के नाम से जाना जाने लगा।

अरब के अधिकांश लोग कबीले के रूप में चारागाह तथा आजीविका की खोज में इधर– उधर घूमते रहते थे। प्रत्येक नगर और कबीले का अलग–अलग नेता होता था, जिसे शेख कहते थे। यह नेता कबीले और नगर का शासक होता था। यहाँ के प्रत्येक नगर व कबीले के अलग–अलग कानून और रीति–रिवाज होते थे। इन कबीलो में एकता और राष्ट्रीयता का पूर्ण रूप से अभाव था। इनमें प्रादेशिक भावना प्रबल थी इसलिए ये आपस में लड़ते रहते थे। अरब लोग बहुदेववाद में विश्वास रखते थे। प्रत्येक कबीले का अलग–अलग देवता होता था।

इस्लाम मज़हब के संस्थापक हजरत मोहम्मद थे। इनका जन्म 570 ई. में अरब प्रायद्वीप के मक्का नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला तथा माता का नाम आमिना था। ये कुरैशी नामक कबीले से सम्बन्धित थे। मुहम्मद के बचपन में ही उनके माता–पिता का देहान्त हो गया था। इनका लालन–पालन चाचा अबूतालिब के द्वारा किया गया था। इनका प्रारम्भिक जीवन सुख–सुविधाओं से वंचित रहा। जीवन के प्रारम्भिक काल में ये ऊँट तथा भेड़–बकरियाँ चराया करते थे। बड़े होने पर उन्होंने व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया तथा अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्व थे। बाद में एक धनी महिला व्यापारी के सम्पर्क आने पर इन्होंने उसके यहाँ नौकरी कर ली। 25 वर्ष की उम्र में अपने से बड़ी 40 वर्षीय इसी विधवा महिला खदीजा से विवाह कर लिया। इस प्रकार वे एक समृद्ध व्यापारी बन गये और लौकिक सुविधाओं की सारी वस्तुऐं सुलभ हो गई। किन्तु मोहम्मद का मन सांसारिक भोग–विलास में नहीं लगा और वे आध्यात्मिक चिन्तन में लीन रहने लगे। मक्का के नजदीक हिरा की पहाड़ी गुफा में बैठकर वे ध्यान लगाते तथा अलौकिक सत्ता के बारे में चिन्तन करते रहते थे। उन्हें ध्यान करते हुए देवदूत जिब्राईल के माध्यम से अल्लाह का पैगाम मिला कि सत्य का

प्रचार करें। जिब्राइल ने उन्हें नये मज़हब की स्थापना करने और उस मज़हब का पैगम्बर बनने का सन्देश दिया। उस समय अरब में सब जगह अन्धविश्वास और अज्ञानता का बोलबाला था। कुछ अरबवासी बहुदेवों, भूतप्रेतों आदि में विश्वास करते थे। मुहम्मद ने मूर्तिपूजा का विरोध किया तथा "एक अल्लाह" की अवधारणा वाले मज़हब का उपदेश दिया।

हजरत मुहम्मद को एक के बाद एक अल्लाह के संदेश प्राप्त हुए जिनसे उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि अल्लाह ही की एक मात्र सत्ता है, स्वयं वे ही एक मात्र अल्लाह के पैगम्बर हैं। उन्होंने लोगों के सामने वे सभी अलौकिक बातें रखी, जो अल्लाह के सन्देश के रुप में सुनी थी। पारम्परिक मज़हबी व्यवस्था में विश्वास रखने वाले लोग उनके शत्रु बन गये। अन्त में ऐसी परिस्थितियाँ बन गईं कि 622 ई. में उन्हें मक्का छोड़कर मदीना जाना पड़ा। इसी घटना को "हिजरत" कहते हैं। इसी दिन से (622 ई. से) हिजरी संवत् प्रारम्भ होता है। इस्लाम मज़हब मानने वाले इस वर्ष को हिजरी कहते हैं। सेवाइन ने लिखा है कि "उनका मदीना पलायन, जिसे हिज्र कहा जाता है, इस्लाम के विकास में परिवर्तन का केन्द्र था क्योंकि इसी समय से उसका प्रचार शुरू हुआ।" हजरत मुहम्मद की मृत्यु 632 ई. में हुई। हजरत मुहम्मद अपनी आय का अधिकांश भाग दान कर देते थे। उन्होंने अपने जीवन में इस्लाम के सिद्धान्तों का प्रचार किया।

हजरत मुहम्मद की शिक्षाएँ:—

हजरत मुहम्मद के जीवन—व्यवहार के उदाहरणों व उनके कथनों का संकलन उनके शिष्यों के द्वारा "हदीस" नामक ग्रन्थों में किया गया एवं इस्लाम के सिद्धान्तों का संकलन उनके शिष्यों द्वारा "कुरान" नामक ग्रन्थ में किया गया। कुरान में इस्लाम मज़हब के वे सिद्धान्त हैं, जो मुहम्मद साहब को अल्लाह से प्राप्त हुए थे। कुरान शरीफ में 144 सुरा (अध्याय) हैं। कुरान और हदीस दोनों ही पुस्तकें मुसलमानों के पवित्र मज़हबी ग्रन्थ हैं।

1. इस्लाम मजहब के अनुसार अल्लाह एक है जो सर्व शक्तिमान है । हजरत मुहम्मद उसके एक मात्र पैगम्बर हैं ।

2. हजरत मुहम्मद ने अरब में प्रचलित मूर्ति पूजा का विरोध किया ।

3. हजरत मुहम्मद ने प्रत्येक मुसलमान को पाँच कर्त्तव्यों का पालन करने का आदेश दिया—

(i) कलमा पढ़ना (शहादहः) – " अल्लाह एक है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है" यही इस्लाम का मूल मंत्र है। अल्लाह के एकत्व और मुहम्मद के प्रेषितत्व पर श्रद्धा का प्रमाण देना 'शहादहः' कहलाता है ।

(ii) नमाज पढ़ना (सलातः) – इस्लाम के अनुयायियों को पाँच बार नमाज पढ़ना चाहिये। पाँचों नमाजों के समय (i) फज्र– सूर्योदय से पूर्व (ii) जोहर– मध्याह्न (iii) अस्र– अपराह्न (iv) मगरीब– सूर्यास्त के समय (v) इशा– रात्रि काल में । शुक्रवार को दोपहर में सभी मुसलमानों को सामूहिक रूप से एक साथ नमाज पढ़नी चाहिये ।

(iii) रोजा रखना (सौमः) —शारीरिक दृष्टि से सक्षम हर मुसलमान को प्रति वर्ष रमजान के महीने में रोजे रखने चाहिये। अरबी भाषा के सौमः शब्द का फारसी पर्याय रोजा है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक का उपवास रोजा कहलाता है।

(iv) जकात (जकातः) – इसका शाब्दिक अर्थ शुद्धिकरण' तथा पारिभाषिक अर्थ 'कुरान प्रणीत मजहबी कर' है। इस्लाम के अनुयायियों को प्रतिवर्ष अपनी आय का 40 वां हिस्सा जकात (दान) देना चाहिये ।

(v) हज (हज्जः) – प्रत्येक मुसलमान को जीवन में एक बार हज (मक्का व मदीना की तीर्थ यात्रा) अवश्य करना चाहिये ।

4. इस्लाम की मान्यता है कि मनुष्य को मृत्यु के पश्चात अपने कर्मो के अनुसार जन्नत या जहन्नम में जाना पड़ता है ।

5. इस्लाम के अनुसार खुदा की इबादत के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है।

6. इस्लाम पुनर्जन्म को नहीं मानता।

काबा :–

"काबा" मक्का की विशाल मस्जिद में बनी संगरमरमर की एक छोटी सी इमारत है जिसका निर्माण सच्चे अल्लाह की इबादत (अराधना) के लिए अब्राहम ने करवाया था। इसी इमारत में एक पवित्र "काला पत्थर" भी लगा है जिसके बारे में मान्यता है कि उसे जन्नत से आदम के साथ ही धरती पर फेंका गया था, तथा "काबा" के निर्माण के समय "जिब्राइल" ने उसे अब्राहम को दिया था। यह पत्थर काबा की मस्जिद में आज भी लगा हुआ है। हाजी इसकी जियारत करते हैं। यह नियम है कि प्रत्येक मुसलमान जहाँ कहीं भी हो, उसे सदैव काबा की ओर मुँह करके नमाज पढ़नी चाहिये। इसे किबला कहते हैं।

इस्लाम के मूल सिद्धान्त –

इस्लाम शब्द का अरबी भाषा में अर्थ– 'समर्पण' (अल्लाह के प्रति) तथा 'शांति' होता है। जो व्यक्ति इस्लाम में श्रद्धा रखता है, 'मोमिन' कहलाता है। इस्लाम के मूलभूत श्रद्धा बिन्दुओं को 'उसूले दीन' कहते हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. तौहीद– एक ईश्वर (अल्लाह) पर अविचल श्रद्धा। अल्लाह के साथ किसी अन्य को भागीदार बनाना 'शिर्क' कहलाता है जैसे–

(i) अल्लाह का अस्तित्व किसी अन्य में या विपरीत कल्पना करना।

(ii) किसी अन्य को अल्लाह के समकक्ष मानना।

(iii) किसी को अल्लाह का पिता या पुत्र मानना।

(iv) अल्लाह के गुण विशेष में किसी को सहभागी मानना।

(v) 'शिर्क' करने वाला व्यक्ति 'मुशरिक' कहलाता है।

2. रिसाल्लाह या नुबूवत – अल्लाह के बाद इस्लाम में सबसे महत्वपूर्ण शब्द 'रसूल' अथवा 'नबी' है। रसूल का अर्थ प्रेषित या भेजा हुआ होता है। अर्थात अल्लाह का संदेश लोगों तक पहुँचाने के लिए भेजा हुआ दूत'। नबी का अर्थ पद चिह्न अर्थात् जिसका अनुसरण किया जाना चाहिए। हजरत मुहम्मद को सन् 610 ई. में नुबूवत मिली तथा इन्हें अंतिम पैगम्बर मानते हैं।

3. मलायकह– फरिश्ते, ईशदूत पर श्रद्धा 'मलायकह' कहलाती है। सातवें आसमान पर अल्लाह के सिंहासन के निकट चार फरिश्ते 'हमलत अल अर्ष' कहलाते है। अल्लाह की स्तुति करने वाले फरिश्ते करुबियून, इनके पश्चात् जिब्रील, मिकाईल आदि फरिश्तों का क्रम आता है। अल्लाह से पैगम्बर तक कुरान का अवतरण जिब्राइल द्वारा हुआ था। फरिश्तों की संख्या अनगिनत है।

4. कुतुबुल्लाह – इस शब्द का अर्थ है– अल्लाह के ग्रंथों पर श्रद्धा रखना। जिनके पास अल्लाह के ग्रंथ हैं, वे 'किताब वाले' कहलाते हैं जैसे– मुसलमान, ईसाई, यहूदी। इस्लामिक मान्यता के अनुसार इन सबमें कुरान ही शुद्ध है।

5. योग अल्–कियामह – अल्लाह के निर्धारित किए समय तक मनुष्य अल्–दुनिया (पृथ्वी लोक) में रहता है। मृत्यु के बाद का समय उसे कब्र में बिताना होगा, इसे 'बरझख' की स्थिति कहते हैं। इसके बाद की स्थिति 'योग अल्–कियामह' (पुनरुत्थान दिवस) आती है अर्थात् कयामत (प्रलय) के दिन सभी को जीवित किया जाएगा और अल्लाह के सामने लाया जाएगा और कर्मानुसार जन्नत या जहन्नम में भेजा जाएगा।

6. अल्–कद्र – अल्लाह की योजनानुसार सब घटित होता है और आगे भी होगा, इस श्रद्धा को 'अल् कद्र' कहते हैं।

7. मिशाक – इसका अर्थ 'इकरारनामा' (अनुबंध) है। अल्लाह अपने चयनित लोगों से अनुबंध करता है। वर्तमान में 'उम्मतु मुहम्मदी' अर्थात मुसलमान अल्लाह के अनुबंधित, चयनित लोग हैं, ऐसी इस्लाम की मान्यता है।

इस्लाम के फिरके – हजरत मुहम्मद की मृत्यु के बाद उनके ससुर अबु बक्र को प्रथम खलीफा बनाया गया। किंतु इस चयन

से सभी लोग प्रसन्न नहीं थे। कुछ लोग हजरत मुहम्मद के भतीजे तथा दामाद अली को प्रथम खलीफा बनाना चाहते थे। यहीं से मुस्लिमों में शिया–सुन्नी विभाजन हुआ। शिया प्रथम तीन खलीफाओं (अबु बक्र, उमर और उस्मान) को नहीं मानते। इस्लामी परिभाषा में 'शिया' शब्द 'शियत अली' (अली का पक्ष या गुट) का लघु रुप है। 'सुन्नाह' (पैगम्बर की परम्परा) शब्द से 'सुन्नी' शब्द बना। इस्लाम में 73 फिरकों की बात की जाती है। शियाओं के फिरके इमामी, फातिमी, जाफरी अथवा अशरियाह, इस्माईली, नज्जरिया, मुस्तालिया (क्रमशः खोजा, बोहरा कहलाए) बोहरा में भी दाउदी, सुलेमानी आदि उप विभाजन हैं। भारत में हनफी सुन्नी भी देवबंदी व बरेलवी गुट में बँटे हैं।

ईसाई रिलीजन

उद्भव और विकासः– ईसाई रिलीजन के प्रवर्तक ईसा एक यहूदी थे। उनके जीवन का प्रामाणिक वर्णन तो उपलब्ध नहीं है लेकिन ' न्यूटेस्टामेन्ट' (बाईबल का नया नियम) के आधार पर इतनी जानकारी अवश्य मिलती है कि बचपन से ही उनकी मजहबी ग्रंथों को पढ़ने में रूची थी। ईश्वर को समझने और सत्य की खोज करने की जिज्ञासा उनके हृदय में प्रारम्भ से ही थी। जब भी उनको समय मिलता तो विद्वानों व सन्तों से बातचीत करते थे। ईसाई रिलीजन के मनाने वालों की मान्यता के अनुसार ईसा मसीह का जन्म बेथलेहम (जोर्डन) में कुमारी माता मरियम के गर्भ से हुआ था। उनके पिता युसुफ थे जो पेशे से बढई थे।

आध्यात्मिक जीवन :– ईसा के जीवन की मुख्य घटना यहुन्ना से मिलना था। यहुन्ना भी यहूदी था और जोर्डन नदी के तट पर निवास करता था। ईसा ने उनसे दीक्षा ली। यहीं से ईसा मसीह के आध्यात्मिक जीवन की शुरूआत मानी जाती है। जब यहुन्ना को शासकों द्वारा कैद कर लिया गया तब ईसा मृत सागर और जोर्डन नदी के निकटवर्ती प्रदेशों में उपदेश देते रहे। ईसा मसीह ने कहा कि संसार में पाप का राज्य है शैतान यहाँ का राजा है सभी उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। शासक महात्माओं को मरवा देता है। विद्वान और महात्मा लोग जैसा कहते है, वैसा आचरण नहीं करता है। भले लोगों को इस संसार में न्याय तक नहीं मिलता है। पाप का घड़ा भर गया है और फूटने वाला है। ईसा मसीह लोगों को छोटी–छोटी कथाओं के माध्यम से प्रेम, दया, क्षमा, भाई चारे, शान्ति, अहिंसा का उपदेश देते थे। वे हमेशा यही कहते थे कि " तुझे केवल प्रेम करने का अधिकार हैं। पड़ौसी को अपने समान ही चाहो तथा स्वार्थ भावना का त्याग करो।

अन्तिम भोजः– ऐसी कथा है कि ईसा मसीह ने एक दिन अपने शिष्यों के साथ भोजन करते हुए अपने हाथ से शिष्यों को रोटी दी और कहा " लो इसे खाओ यह मेरा शरीर है, तुम्हारे लिए दिया जाता है, "इसके बाद उन्होंने अंगूरों का रस देते हुए कहा कि " यह मेरा रक्त है, इसे पी जाओ। यह पापियों की क्षमा के लिए तब तक बहाया जाएगा, जब तक प्राणियों का उद्धार न हो जाए। अन्तिम भोजन के बाद वे अपने शिष्यों के साथ घूम रहे थे लेकिन मन की बैचेनी बढ़ने के कारण उनका साथ छोड़कर एकान्त में चले गये। उन्होंने प्रार्थना में ईश्वर से कहा कि " दुःख उठाना और मरना मनुष्य के लिए दुख दायी है। हे पिता, यदि तेरी इच्छा हो तो ऐसा ही होगा। " लौट कर अपने शिष्यों से कहा वह समय आ गया है कि जब एक विश्वासघाती मुझे शत्रुओं के हाथों सौंप देगा। तब ही जूड़ास नामक शिष्य उनकी गिरफ्तारी के लिए सशस्त्र सिपाहियों को साथ लेकर आ गया और ईसा को गिरफ्तार कर लिया गया। ईसा की गिरफ्तारी के बाद रोमन अदालत में मुकदमा चलाया गया तथा यहूदियों के प्रधान पुरोहित कैफस ने ईसा पर आरोप लगाया कि उसने अपने को "ईश्वर का पुत्र कह" कर 'जेहोवा' देवता का अपमान किया है । कैफस ने उन्हें राजद्रोही, मजहब विरोधी और पाखण्डी घोषित कर दिया । इसके बाद उसे रोमन गवर्नर 'पाइलेट' के यहाँ भेज दिया गया। पाइलेट ने जीसस को राजद्रोही एवं अपराधी मान कर सूली की सजा दे दी ।

सूली पर चढ़ाने से पहले ईसा को घोर यातनायें दी गई। सूली के तख्त को ढ़ोना पड़ा और कांटों के ताज को पहनाया गया । 29 ई. में बसन्त ऋतु में शुक्रवार को यरूसलम के बाहर गोलगाथा नामक स्थान पर ईसा को सूली पर चढ़ा दिया गया । उस समय जीसस ने ईश्वर से प्रार्थना की "हे ईश्वर इन्हें क्षमा करना, क्यों कि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।"

ईसाईयत के विश्वास के अनुसार ईसा ने अपनी मृत्यु के बाद पुनर्जीवित होकर चालीस दिन तक अपने शिष्यों को दर्शन दिये और उन्हें अपने उपदेशों के प्रचार के लिए कहा। मृत्यु के बाद पुनः प्रकट या जीवित होकर उपदेश देने की घटना को ईसाई मजहब में ''रिसरेक्सन' कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि जीसस मृत्यु के तीसरे दिन रविवार को जीवित हुए थे, तब से ईसाई उस रविवार को "इस्टर सण्डे" के रूप में मानते हैं ।

ईसा के शिष्यों ने ईसा के उपदेशों का जरूसलम, जूडिया गेलिली, एशिया माइनर तथा मिस्र आदि देशों में प्रचार किया। ईसा के उपदेश ईसाईयत के सिद्धान्त बन गये और इन सिद्धान्तों में विश्वास करने वाले व्यक्ति ईसाई कहलाये ।

ईसा की शिक्षायें :–

1. पृथ्वी पर ईश्वर की सत्ता है
2. मनुष्य ईश्वर–प्रेम से पवित्र होकर, ईश्वर में पूर्ण आस्था रख कर, ईश्वर–राज्य की स्थापना कर सकता है।
3. ईसा मसीह ईश्वर को पिता और अपने को ईश्वर का पुत्र मानते थे।
4. ईश्वर एक है अनादि और अनन्त है और सर्वशक्तिमान है।
5. ईश्वर के स्वरूप को कोई मूर्ति व्यक्त नहीं कर सकती।
6. ईसा मसीह मनुष्य को पवित्र बनने ईश्वरीय आराधना करने तथा ईश्वरीय नियमों के अनुसार जीवन जीने का उपदेश देते हैं।
7. पाप के कारण मनुष्य की दुर्गति देख कर ईश्वर ने मुक्ति का मार्ग बताया तथा उस मार्ग को तैयार करने के लिए उसने यहूदी जाति को ही अपनी प्रजा के रूप में ग्रहण किया है। अर्थात् यहूदी ईश्वर के चुने हुए लोग हैं।
8. एक ही ईश्वर में तीन व्यक्ति हैं– पिता (गॉड), पुत्र (जीसस) और पवित्र आत्मा (होली घोस्ट)। तीनों समान रूप से अनादि, अनन्त और सर्वशक्तिमान हैं क्योंकि वे एक ही तत्व के अंश हैं। इसे 'ट्रिनिटि (त्रित्व) का सिद्धान्त' कहते है।
9. मनुष्य की अमर आत्मा एक ही बार मानव शरीर धारण कर संसार में जीवन व्यतीत करती है। ईसाई मत का मानना है कि कयामत (डूम्स डे) के दिन सभी मनुष्य सशरीर जी उठेंगें और ईसा उनका न्याय करने के लिए स्वर्ग से आएगे। जो ईसा की शरण में आए, वे 'पैराडाइज' (स्वर्ग) में तथा पापी 'हेल' (नरक) में जाएँगे।
10. ईसाईयत में पुनर्जन्म को नहीं मानते।
11. ईसा को अपना तारक मानने वालों को ईसा पाप से मुक्त करता है। वह पापियों की मुक्ति के लिए ही सूली पर चढ़े। मनुष्य मूलतः पापी है, इसे 'ऑरिजनल सिन' कहते हैं।'

ईसाईयत के संस्कार :–

ईसा ने जीवन के कुछ नियम बनाये जिन्हें संस्कार कहते है ईसाईयत के संस्कारों को बाइबिल में ''सेक्रामेन्ट'' कहा जाता है । सैक्रामेन्ट संख्या में सात हैं – संत आगस्टाइन ने पाँचवी शताब्दी में सेक्रामेन्टो की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त की – ''सैक्रामेन्ट एक आन्तरिक ईश्वर प्रार्थना व गौरव की बाहरी या लौकिक प्रदर्शनी है ।'' इन सेक्रामेन्टों में गिरजाघरों को ईसा का प्रतीक बताया गया और दैनिक जीवन में इनके पालन पर जोर दिया गया ।

1. नामकरण – इस संस्कार को बैपटाइजेशन (बपतिस्मा) कहते हैं। जब बालक तीन वर्ष का हो जाता है तो पादरी पवित्र जल छिड़ककर उसका नाम रखता हैं। इसे नामकरण संस्कार कहते हैं। इस संस्कार से बालक ईसाई रिलिजन का अनुयायी हो जाता हैं । यह किसी भी व्यक्ति को ईसाई घोषित करने का संस्कार हैं।

2. प्रमाणी करण – इसे कनफरमेशन संस्कार भी कहते हैं। जब बालक 12 वर्ष का हो जाता है तब उसके नाम की सार्वजनिक घोषणा की जाती है । इसे प्रमाणीकरण संस्कार कहते है । इस संस्कार से उसके ईसाई होने की पुष्टि होती है।

3. प्रभु का भोजन – ईसा ने अपनी मृत्यु से पूर्व अपने बारह अनुयायियों के साथ भोजन किया था। इस दिन

को ईसाई लोग पवित्र त्यौहार कहते हैं । सभी एक साथ बैठकर भोजन करते हैं ।

4. प्रायश्चित– ईसाईयत के अनुसार यदि कोई भी अपराधी पादरी के समक्ष ईसा से अपने अपराधों की क्षमा मांग ले तथा बुरे कर्मो का प्रायश्चित कर ले तो ईश्वर उसको क्षमा कर देता है। इसमें 'कन्फेशन' या पापों की स्वीकृति तथा 'पेनेंस' या प्रायश्चित, यह क्रम रहता है।

5. अन्तिम स्नान – इस संस्कार में मरणासन्न मनुष्य को अन्तिम पवित्र स्नान करवाया जाता है ताकि उसकी आत्मा से सांसारिक दाग साफ हो जाएं ।

6. दीक्षा –यदि कोई व्यक्ति जो 18 वर्षों की आयु से अधिक हो और पादरी बनना चाहता हो, उसे दीक्षा दी जाती है उसे "औरडीनेशन" (ईश्वरीय अनुकम्पा) दीक्षा संस्कार कहते है ।

7. विवाह– इस संस्कार से पुरूष और स्त्री वैवाहिक बंधन में, बधने के पश्चात गृहस्थ जीवन में प्रवेश को मान्यता दी जाती है।

ईसाईयत का प्रमुख ग्रन्थ बाइबिल है। ओल्ड टेस्टामेन्ट (पुराना नियम) व न्यू टेस्टामेन्ट (नया नियम) से मिलकर बाइबिल बनी है। आरम्भ में ईसाई यहूदियों के मूलग्रन्थ ओल्ड टेस्टामेंट को अपना पवित्र ग्रन्थ मानते हैं क्योंकि उनके कई सिद्धान्त इस ग्रन्थ में है। ईसाईयों का मानना था कि ओल्ड टेस्टामेन्ट की घोषणा के अन्तर्गत ईसा का जन्म हुआ था । ईसा के शिष्य, मार्क, मैथ्यू, ल्यूक और जोन ने चार गोस्पल (सुसमाचार) की रचना की, इनका संग्रह 'न्यूटेस्टामेन्ट' के नाम से प्रसिद्ध है । इसमें ईसा के जीवन, उनके उपदेश, उनके दर्शन तथा जीवन की रोचक कथाओं को संग्रहीत किया गया ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अति लघूरात्मक प्रश्न (दो पंक्तियों में उत्तर दिजिये) :–

1. वैदिक साहित्य में किन ग्रन्थों का सम्मिलित किया जाता है ?
2. सबसे प्राचीन वेद कौन सा है ?
3. पंच महायज्ञ कौन से हैं ?
4. महावीर स्वामी को ज्ञान किस स्थान पर प्राप्त हुआ ?
5. जैन धर्म के पंच महाव्रत कौनसे हैं।
6. महात्मा बुद्ध का जन्म कहाँ हुआ ?
7. बौद्ध धर्म में महाभिनिष्क्रमण क्या है ?
8. हजरत मोहम्मद को मक्का क्यों छोड़ना पडा ?
9. मुस्लिम मजहब का पवित्र ग्रन्थ कौनसा है ?
10. रिसरेक्सन क्या है ?
11. न्यू टेस्टामेण्ट क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिये)

1. वैदिक धर्म को परिभाषित कीजिये ?
2. वैदिक धर्म में उपासना विधि कौन सी है ?
3. वैदिक धर्म में देवताओं के नाम लिखिए।
4. जैन धर्म में सम्यक् दर्शन क्या है ?
5. जैन धर्म की विश्व को क्या देन है ?
6. जैन धर्म में कर्म और पुनर्जन्म का सिद्वान्त क्या है ?
7. बौद्ध धर्म में निर्वाण (मोक्ष) कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?
8. मोहम्मद पैगम्बर के जीवन पर टिप्पणी लिखिये ?
9. बौद्ध धर्म की विश्व संस्कृति को क्या देन है ?
10. ईसाई रिलिजन के संस्कार कौन कौन से हैं?
11. ईसा के जीवन के बारे संक्षिप्त में लिखिये?

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. वैदिक धर्म में पुरुषार्थ व आश्रम व्यवस्था की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. जैन धर्म के अनुसार मनुष्य केवल्य (मोक्ष) कैसे प्राप्त कर सकता है ?
3. गौतम बुद्ध के जीवन का वर्णन कीजिये तथा उनके आष्टांगिक मार्ग पर प्रकाश डालिये ?
4. हजरत मोहम्मद की शिक्षाओं का वर्णन कीजिए?
5. ईसा मसीह की शिक्षाओं का वर्णन कीजिए ?